~~6423~~

तित्थयर

अगस्त १९९२

षोड़श वर्ष : चतुर्थ अंक

जैन भवन

श्री ... महावीर जैन ... मंदिर ... गांधी ...

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष १६ : अंक ४

अगस्त १९९२

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया।

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७

सूची

चन्दना	९९
त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र	१११
क्षमापना पत्र या वैभव का दिखावा ?	१२४

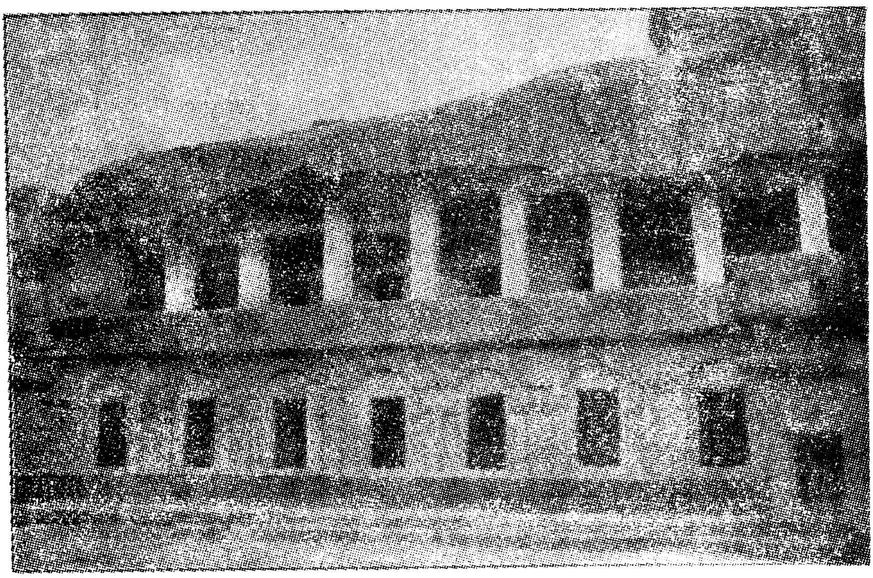

रानी गुम्फा, खण्डगिरि, उड़ीसा

चन्दना

श्री नागार्जुन

[महाप्राण निराला जी की ही भांति श्री नागार्जुन भी नारी मुक्ति के प्रबल समर्थक रहे हैं। इसीलिए उन्होंने चन्दना के इस कथानक को चुना है। नारी मुक्ति के महान पक्षधर भगवान महावीर के जीवन की घटनाओं से इस कथानक को लेकर अपनी सहज किन्तु मार्मिक शैली में अभिव्यक्त कर काव्य को रोचक एवं हृदयग्राही बना दिया है। 'तित्थयर' के पाठकों के लिए कवि की 'युगधारा' नामक काव्य पुस्तक से इसे प्रस्तुत कर रहे हैं। —सम्पादक]

वत्स नृप शतानीक चम्पा पर चढ़ आये
रातोरात घेर लिया नगरी को सैन्य ने
पुत्र-पुत्री दारा
सारा का सारा
छोड़कर परिजन, पुरजन, कोष, बल
भाग गये दधिवाहन चम्पापति दुर्ग से
झुक गया विजयी के चरणों पर अंगदेश
मान लिया अनुशासन।

निज सैनिकों के प्रति
विजयी की तरफ से सहसा हुई घोषणा
बहुत दिन हो गये हमको प्रवास में
चलो चलें, कूच करें कौशाम्बी की ओर
लूटकर ले चलें जो जिसके हाथ लगे
खाली क्यों लौटेंगे होकर हम विजयी?

मिलते ही आदेश
करने लगे लूटपाट महामत्त सैनिक
जंगली सूअर ज्यों ऊधम मचाते हैं हरे-भरे खेत में
करते हैं बरबाद सुनहली फसलें
ऊँट सवार सैनिक एक पा गया रानी को
कुमारी वसुमती भी उसके ही हाथ पड़ी

'कुमारी को दूंगा बेच, रानी को रख लूँगा'
ऐसा विचार कर
दोनों को ऊँट पर बैठा लिया उसने
सैनिक की दुरभिसंधि ताड़ गई रानी
कर लिया आत्मघात
खा लिया विष और सोई ही रह गई
बाँह के सहारे
राह के किनारे
किसी पथिकशाला में
रोती बिलखती
वसुमती को लेकर
सैनिक चला आगे
कैसे साथ छोड़ता भला वह सैन्य का !!

पहुँचे वे कौशाम्बी दो ही चार दिन में
सौगात ले-लेकर
गये सब निज घर
ज्ञातिवृद्ध, कुलवृद्ध, वयोवृद्ध गुरुजन
सूंघ-सूंघ शीश
अभिनन्दन करने लगे
करने लगीं स्वागत सुन्दरी युवतियाँ
तिरछी चितवन से
मदिर मुसकान से
पाकर पिता को शिशु हो उठे प्रमुदित
पालित गृह पशुओं की बँध गई टकटकी
क्योंकि वे विजयी हो लौटे थे
चपत लगा आये थे
काल के गाल में

ऊँट का आरोही
ले गया लड़की को
हाट में बेचने

सबल स्वस्थ सुन्दर फुर्तीले स्वामिभक्त
विकते थे जहाँ हजारों दास-दासीजन
सुस्मित प्रिय-दर्शन
आठ-नौ बरस की
कुमारी वसुमती
देखते ही उसको तत्क्षण खरीद लिया
धनावह सेठ ने मुँह माँगे दाम पर
ले जाकर घर में सेठानी को सौंप दिया
"भद्रे, यह बालिका जाने किस पुण्य से मिल गई हमको
अपनी ही समझ कर देखो इसे रखना
पालना पोसना···!"
अन्दर में बाहर में
स्व में पर में
उनमें इनमें
थोड़े ही दिन में
वहाँ की प्रकृति में
हिल गई मिल गई
कुमारी वसुमती···
शीतल थी प्रकृति, सुशील था स्वभाव
नाम ही पड़ गया चन्दना उसका !
मान दान भोजन पान···
शयनासन अवस्थान···
मुक्त आत्मीयता···
और क्या चाहिए चन्दना को कुछ भी ?
आश्रय विशाल, वटवृक्ष-सा पाकर—
और क्या चाहिए चन्दना को कुछ भी ?
लगा होने विकसित
निर्द्वन्द्व जीवन
हो गई किशोर वह पार कर बचपन
मादक मधुरिमा आई उभार पर
एक पर एक लगी पंखुरी खिलने
शत-शत दृगों का

बन गई केन्द्र-बिन्दु
कमल की कलिका !
गर्मी के दिन थे
दुपहर को आया सेठ थका-माँदा बाहर से
चन्दना ने देखा, कोई भी नहीं है,
कौन लाये पानी, धुलवाये पैर कौन,
आप यों खड़े रहें कब तक आँगन में ?
सोने की झारी लिये स्वयं ही बढ़ आई
लग गई गृहपति के चरण-कमल धोने !
उस समय उसका
मुक्त था कुंतल
सेठ को दया हुई—
भ्रमर सदृश घुंघराले बाल ये
कीचड़ में पड़ कर होंगे खराब क्यों ?
उठाकर उनको अपने ही हाथ से
जूड़े की शकल में बाँध दिया उसने !
सेठानी ने देख लिया खिड़की से—
यह सब !
हाय ! हाय !
कहाँ की कलमुंही मेरे सिर चढ़ आई ?
अपनो को खा-पका
हमारी गृहस्थी पर
आ गई छुच्छी[1] आग बरसाने
छीन लिया इसने सब
क्या मैं करूँगी अब
हाय ! हाय !
छाती पर लिटा कर पिलाया है दूध अरे,
मैं इस नागिन को अपने ही हाथों
मइया री मइया !
अच्छा···

---

[1] क्षुद्र या तुच्छ का मैथिली रूप ।

करती हूँ प्रतिकार
खतम कर दूंगी
पकड़ कर राँड को,
रहेगा न बाँस और बजेगी न बाँसुरी....

सेठ गया बाहर तो
क्रोधित सेठानी ने
नाई को बुलवा कर
चन्दना के सुन्दर बाल कटवा दिये
कर दिया बेहोश कोड़े से पीट-पीट
डाल दिया तलघर में साँकल चढ़ा कर;
मना किया दासियों को :
लाख पूछने पर कहना न सेठ से
बुरा होगा उसका हाल
खींच लूंगी कच्ची खाल
जिस किसी के मुँह से निकलेगी बात यह
खबरदार !
कुछ समय पश्चात्
घर आये सेठजी
दासियों से पूछा—कहाँ है चन्दना ?
किसी ने कुछ न कहा सेठानी के डर से
और क्या, इधर-उधर खेलती होगी भला
सेठ ने सोचा और खाने को बैठ गये
दूसरे दिन भी दासियों से पूछा—
चन्दना कहाँ गई ?
किसी ने कुछ न कहा सेठानी के डर से
और क्या, मिलने गई होगी किसी सखी से,
सेठ ने सोचा यह
खाने को बैठ गये,
तीसरे दिन भी जब
किसी ने कुछ न कहा सेठानी के डर से
सेठ को शक हुआ, शोक हुआ, क्रोध हुआ,

कहाँ गई चन्दना !
जला दूँगा घर यदि मिली नहीं चन्दना
जान दे दूँगा यदि मिली नहीं चन्दना
बुढ़िया थी दासी एक,
सेठ को क्षुब्ध देख उसने विचार किया
क्या करूँगी जीकर यदि चन्दना ही न रही !
कान दोनों छूती हुई बोली वह सेठ से :
मेरे प्रभु, अपराध क्षमा नहीं करना,
कठिन से कठिन दण्ड देना प्रभु मुझको
सभी कुछ जान कर
अभी तक मैं चुप थी
चौथा दिन होगा आज
तलघर में बन्द है, मेरे प्रभु, चन्दना !

पत्नी की दुरभिसंधि
धनावह समझ गया
सेठानी की दहशत मौन का कारण थी,
गर्भदास-दासी जन
स्वामियों के खिलाफ
कैसे करें साहस !
    ···तलघर की साँकल को
जाकर के खोल दिया
धनावह सेठ ने···
पैर थे निगड़ में, बेड़ियों में हाथ थे,
मुंडित था मस्तक
वक्षस्थल नग्न था···
दृग दोनों रो-रोकर आये थे सूज
कुमारी वसुमती का बहुत बुरा हाल था !
देख कर दृश्य यह सेठ घबरा गया
अपने को थाम कर आया नजदीक
चन्दना की ठोड़ी को उठा लिया ऊपर
देने लगा आश्वासन :

बेटी यह क्या हुआ ?
भोग रही इस घर में कैसा अभिशाप
जाने किस कुलग्न में
तुमने थे पैर रखे
कौशाम्बी नगरी में।

फफक-फफक कर रोने लगी चन्दना
पाकर समवेदना-स्निग्ध बोल दो चार
आँसू पोंछ उनके निज धोती के खूँट से
भोजन की वस्तु कुछ सेठ गये खोजने
रसोई के घर मे !
दाल भात व्यंजन कुछ भी नहीं था वहाँ
थी केवल एक वस्तु
सूप में पड़ी हुई थोड़ी-सी कुलथी
वही लेकर दे आये सेठजी उसको।
—तब तक कुछ खा ले
जब तक लुहार को बुला कर लाता हूँ
निगड़ और श्रृंखला खोल वह देगा।
लुहार को बुलाने
सेठ गये बाहर !

रात दिन अप्रमत्त
जागरूक निर्ग्रन्थ
लिच्छविकुल[२] प्रव्रजित
महावीर वर्धमान
विहरते थे उन दिनों
कौशाम्बी में ही
सगण सपरिषद्।[३]
एक बार

---

[२] भगवान महावीर ज्ञातृकुल के थे।—सं

[३] उस समय भगवान छद्मस्थ थे। अतः अकेले विचरते थे।—सं

मन ही में आपने
अभिग्रह[४] यह कर लिया ।
आज मुझे
दीन-हीन उपेक्षित दुर्गत पददलित
अश्रुमुख क्रय-क्रीत दासी के हाथ से
होगा यदि भिक्षा-लाभ
करूँगा, आहार तभी
अन्यथा खाली लौट आऊँगा !
अभिजात महाशाल
बड़े-बड़े गृहपति
राजपूत ब्राह्मण धनकुबेर बनिया
नगर में जनपथ में अगणित भरे पड़े
गौरव है राष्ट्र के,
उन्हीं के यहाँ से साधु पिंडपात पाते हैं !
पाता नहीं अवसर अवहेलित मानव
रहती अनिवेदित ही श्रद्धांजलि उसकी
हाय हाय ! साधुजन—
अन्न जल, साथ साथ देखते हैं कुल भी,…
रखते हैं भेद-भाव—
सवर्ण असवर्ण में,
नर और नारी में,
प्रभु और दास में,
धिक धिक तथापि वे
शान्ति और समता के वाहन कहाते हैं !
उठा दिन डेढ़ पहर
निकले वह बाहर
भिक्षा के कारण !
ज्यों महावारण
(धीर और ललित गति)
निकला हो स्थिरमति

---

४ एक प्रकार का आग्रह, नियम या प्रतिज्ञा ।

चारा की खोज में
एकटक निर्विकार
खड़े ये सब द्वार द्वार
सब की थी लालसा···
अन्न-जल शुद्ध हैं;
दोगे किस कुल को आज पुण्य-अवसर !
···किन्तु वह
सीधे ही चले गये नगर की छोर पर···
उससे भी आगे,
लौट नगर आये फिर उसी राह से
आये थे जिधर से उधर ही गये आप
नत नेत्र चुपचाप
चकित और विस्मित
लोग थे चित्र-लिखित
तीन दिन लगातार ऐसा ही क्रम रहा
चिन्तित हुई जनता
कौन-सा अभिग्रह वह
कौन सा नियम है
कि जिससे महावीर
भिक्षा नहीं लेते हैं ?
आते हैं किन्तु आप
नत नेत्र चुपचाप
खाली लौट जाते हैं
कैसा अभिग्रह वह
कौन-सा नियम है ?···
चौथे दिन
पहुँचे धनावह सेठ के द्वार पर
तलघर के सामने
तीर्थंकर महावीर···
शृंखलित-कर-चरण चिन्तित थी चन्दना ;
चौथा यह दिन था उसकी भी भूख का !
सूप में कुलथी के दाने थे पड़े हुए

कैसे यह खाऊँ मैं !
किस तरह कंठ के नीचे धँसेगा यह
नहीं, नहीं, कभी न यह खाऊँगी
पड़े ही रह जायेंगे यों ही यह सूप में ?
कि इतने में
दीख पड़े महावीर !
मुदित हुई चन्दना
खिन्न हुई चन्दना
सुखित हुई चन्दना
दुखित हुई चन्दना;—
मेरे पूर्वसंचित पुण्य की प्रतीक यह
देव, तव करुणा !
आये जो यहाँ तक
शृंखलित-कर-चरण
क्रीतदासी अकिंचन
कौन-सी वस्तु दूँ भिक्षा में तुमको ?
कुलथी के दाने···
करोगे स्वीकार भी ?
—प्रभु, मैं क्या करूँ ?
छा गया बेचारी पर दुविधा का बादल
अजीव उलझन थी !
फिर भी हुआ साहस
फिर भी हुई प्रेरणा—
क्यों न मैं अपरिमित पुण्य अब प्राप्त करूँ,
देकर यह दाने अंजलि भर प्रभु को !
श्रद्धा सहित दी हुई
कदन्न यह कुलथी
कर लेंगे अंगीकार
करुणामय अर्हन्त समदर्शी सर्वज्ञ,
लिच्छिविकुल प्रव्रजित वीर प्रभु भगवान···
उठ कर किसी तरह
द्वार की ओर बढ़ी

कुलथी ले चन्दना
स्मितमुख कृतवंदना
कि इतने में
चले गये आगे वह, जाने क्या सोचकर !
होकर हताश तब रो पड़ी चन्दना
आँसू लगे बहने
दोनों ओर गाल पर,
हाय, हाय
पूर्वार्जित प्रत्यवाय
कटे नहीं अब तक
हुआ नहीं पुण्योदय,
सिसक-सिसक रोएगी कब तक यह चन्दना !
कि इतने में
जाने क्या सोच कर
आ गये लौट कर
धनावह के द्वार पर
फिर वह मुनिवर
तलघर के सामने
ज्यों की त्यों खड़ी थी अब तक चन्दना
शृंखलित-कर-चरण
अश्रुमुख अप्रतिम
चित्रलिखित निर्निमेष....
इस बार
पूर्ण हुआ अभिग्रह
दीन-हीन उपेक्षित दुर्गत पददलित
अश्रुमुख क्रयक्रीत दासी के हाथ से
हो गया भिक्षा लाभ
वीर की अंजलि भर गई कुलथी से !

मुदित हुई चन्दना
झुक-झुक कर बार-बार उसने की वंदना !
हुई चट शृंखला फूल के आभरण

(पुष्पदाम-वललिय हो गये, कर-चरण)
भ्रमर सदृश काले घुंघराले बाल भी
पूर्ववत् हो गये
जीर्ण-शीर्ण परिधान
चीनांशुक हो गया
मानो मणिकर्णिका[५]
कोई देवकन्यका
उतरी हो भू पर,
लगती थी ऐसी ही कुमारी वसुमती…
धन्य-धन्य हो उठी चन्दना उस दिन
सारे जन-समाज में…
कर दिया धनावह ने मुक्त उसे
सौंप दिये अधिकार विशाल धन-जन के
बना दी अधिस्वामिनी !
किंतु वह
बंध न सकी बन्धन में
जानकर जगत् को क्षणभंगुर नश्वर
उसने परमार्थ में मन को लगा दिया
चली गई तीर्थंकर वीर की शरण में,
हो गई अनुगृहीत—
मिल गया आश्रय।

सौजन्य : यात्री प्रकाशन, दिल्ली

५ जिसके कानों में मणि लटक रहे हों।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

तृतीय सर्ग

पवनंजय के कहने से प्रहसित तत्काल आदित्यपुर गया और केतुमती को सब कुछ कह सुनाया। यह सब सुनकर केतुमती के हृदय को ऐसा आघात लगा कि वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। कुछ देर पश्चात संज्ञा लौटने पर वह प्रहसित से बोली, 'हे कठोरहृदयी प्रहसित, मरने को उत्सुक अपने मित्र को वन में अकेला छोड़कर तुम यहाँ कैसे आए? हाय! मैंने पापिनी ने बिना विचारे अंजना-सी वास्तविक निर्दोष स्त्री को घर से प्रताड़ित कर कितना नीच कर्म बांधा है। उस साध्वी पर मैंने मिथ्यादोष लगाया उसका फल तो मुझे अभी ही मिल गया। सचमुच अति उग्र पाप और पुण्य का फल मनुष्य को इस जीवन में ही मिलता है।'

रोती हुयी केतुमती को किसी प्रकार शान्त कर राजा प्रह्लाद पवनंजय और अंजना की खोज करने निकले। उन्होंने अपने मित्र विद्याधर राजाओं के पास दूत भेजकर पवनंजय और अंजना की खोज करने को कहा, साथ ही साथ स्वयं भी अनेक विद्याधरों को साथ लेकर पुत्र और पुत्रवधू की खोज करते-करते भूतवन नामक अरण्य में पहुँचे। वहाँ उन्होंने पवनंजय को देखा। पवनंजय चिता प्रज्वलित कर उसके बगल में खड़े होकर बोल रहे थे—'हे वन देवताओं! मैं विद्याधर-राज प्रह्लाद का पुत्र हूँ। मेरी पत्नी का नाम अंजना है। निर्दोष और सती होने पर भी विवाह के दिन से ही मुझ दुर्बुद्धि ने उसको यातनाएँ दीं। उसे अपमानित कर प्रभु के कार्य के लिए मैं युद्ध में गया। राह में दैवयोग से मुझे सुबुद्धि आयी। अतः वहाँ से रात्रि में उसके पास गया। उसके साथ स्वच्छन्द रूप से विहार किया। मैं आया था इसके प्रमाणस्वरूप मैंने उसे अपनी मुद्रिका दी और माता-पिता को बिना बताए मैं फिर लौट आया। वह उस दिन गर्भवती हो गयी। मेरे दोष से मेरे माता-पिता ने उसे दूषित समझकर घर से प्रताड़ित कर निकाल दिया। नहीं जानता वह अभी कहाँ है? वह पहले भी निर्दोष थी अभी भी निर्दोष है किन्तु मेरे दोष और अज्ञानता के कारण न जाने वह किस दुर्दशा को प्राप्त हुयी है।

मुझे धिक्कार है ! मुझ से पति को धिक्कार है ! मैंने सारी पृथ्वी खोज डाली किन्तु भाग्यहीन को जैसे रत्नाकर समुद्र में भी रत्न नहीं मिलता उसी भाँति मैं भाग्यहीन उसे कहीं नहीं पा सका। समस्त जीवन विरहानल में दग्ध होकर मैं बच नहीं सकूँगा। इसलिए आज चिताग्नि में प्रवेश कर एक साथ जल रहा हूँ। हे देवगण ! तुमलोग यदि कहीं भी मेरी प्रिया को देखो तो कहना, तुम्हारा वियोग सहन न कर सकने के कारण तुम्हारा पति अग्नि में प्रवेश कर गया है।'

ऐसा कहकर धू-धू जलती हुयी चिता में उन्होंने जैसे ही कूदना चाहा वैसे ही प्रह्लाद ने जिसने सब कुछ देखा था और सुना था उन्हें पकड़ लिया और छाती से लगा लिया।

पवनंजय चिल्लाते हुए बोल उठे, 'प्रिया के वियोग रूप पीड़ा की औषधि रूप मृत्यु में भी यह कैसा विघ्न ? किसने मुझे शान्ति प्राप्त करने में बाधा दी है ?'

अश्रु प्रवाहित करते हुए प्रह्लाद ने कहा, 'पुत्रवधूको निष्काषित करने को जिसने उपेक्षा की दृष्टि से देखा मैं वही तेरा पापी पिता हूं। हे वत्स, तुमने पहले एक विवेकहीन कार्य किया है और अब तुम बुद्धिमान होते हुए भी इस प्रकार का अविवेकपूर्ण कार्य मत करो। स्थिर हो। तुम्हारी पत्नी की खोज में मैंने हजारों विद्याधर राजाओं को नियुक्त किया है। वे जब तक नहीं लौटें तब तक प्रतीक्षा करो।'

प्रह्लाद ने जिन सब विद्याधरों को पवनंजय और अंजना के सन्धान में भेजा था उनमें से एक दल हनुपुर भी गया। उन्होंने प्रतिसूर्य और अंजना को यह संवाद दिया कि पवनंजय ने अंजना के वियोग में दुःखी होकर अग्नि प्रवेश की प्रतीज्ञा कर ली है।

यह सुनकर किसी ने मानों उसे विषपान करा दिया हो इस प्रकार बार-बार 'हाय मैं मारी गयी' चिल्लाती हुयी अंजना मूर्च्छित हो गयी। चन्दन जल के छींटों से और तालवृन्त से हवा करने पर वह कुछ देर पश्चात संज्ञा लौट आने पर उठ बैठी, और दीन भाव से रोती हुयी विलाप करने लगी—'पतिव्रता स्त्रियाँ पतिहीन होने पर अग्नि में प्रवेश करती हैं। कारण बिना पति के उनका जीवन शून्य हो जाता है, किन्तु जो श्रीमंत हैं, जिनके उपभोग के लिए हजारों स्त्रियाँ हैं, उसके लिए एक पत्नी का शोक तो क्षणिक होना ही उचित है। ऐसा होने पर भी वे क्यों अग्नि-प्रवेश करने जा रहे हैं ? हे

प्रिय, आपके क्षेत्र में यह अपवाद हुआ है ! आप मेरे वियोग में अग्नि प्रवेश कर रहे हैं और मैं आपके विरह में कितने दिनों से जीवित हूँ। इसका मतलब है वे महान सत्वधारी हैं और मैं कम सत्व सम्पन्ना हूँ। नीलमणि और काँच के टुकड़े में जो पार्थक्य है वही मेरे और आप में है। इसमें मेरे सास श्वसुर और माता-पिता का कोई दोष नहीं है। मैं ही भाग्यहीना हूँ। मेरे कर्मों के दोष से ही यह सब घटित हुआ है।'

तब प्रतिसूर्य ने अंजना को समझाकर शान्त किया और हनुमान के साथ विमान में बैठाकर पवनंजय के संधान में निकल पड़े। वे भी पवनंजय को खोजते हुए भूतवन में आए। प्रहसित ने अश्रुसिक्त नयनों से उन्हें आते हुए देखा। उसने तुरन्त अंजना सहित प्रतिसूर्य के आगमन का सम्वाद प्रह्लाद और पवनंजय को दिया। प्रतिसूर्य और अंजना ने विमान से उतरकर दूर से ही प्रह्लाद को प्रणाम किया। निकट आते ही प्रह्लाद ने प्रतिसूर्य को आलिंगन में भर लिया। तदुपरान्त पौत्र हनुमान को गोद में लेकर हर्षोत्फुल्ल बने वे उनसे बोले, 'हे भद्र प्रतिसूर्य, स्वकुटुम्ब सहित मैं दुःख सागर में डूब रहा था तुम्हीं ने हमको बचा लिया है; इसलिए मेरे समस्त कुटुम्ब और सम्बन्धियों में तुम्हीं प्रथम हो। तुम्हीं मित्र हो। परम्परागत वंश-वृक्ष की गौरव रूप संतति के लिए कारणभूता अपनी पुत्रवधू को जिसे बिना दोष के ही घर से प्रताड़ित कर दिया था उसकी रक्षा कर तुमने महान कार्य किया है।'

पवनंजय अंजना को देखकर दुःख से उसी प्रकार निवृत हो गए जैसे समुद्र में ज्वार-भाटा शान्त हो जाता है विरहाग्नि के प्रशमित होने से हृदय प्रफुल्ल हो उठा। समस्त विद्याधर राजाओं ने विद्याबल से आनन्द सागर को उच्छ्वसित करनेवाला चन्द्ररूप महोत्सव किया। तदुपरांत सभी आनन्दमना बने हनुपुर गए। आकाश पथ से उनके विमान को जाते देखकर ऐसा लगा मानो नक्षत्रों की पंक्तियाँ प्रवाहित हो रही हैं। मानसवेगा सहित राजा महेन्द्र भी वहाँ आए। केतुमती और अन्यान्य परिजन भी वहाँ पहुंचे। आत्मीय परिजन और बन्धुओं के आने के कारण विद्याधर राजाओं ने मिलकर वहाँ पहले से भी विशाल उत्सव किया। तत्पश्चात् परस्पर एक दूसरे से बिदा लेकर वे सब अपने-अपने नगर को लौट गए। पवनंजय अंजना और पुत्र हनुमान सहित हनुपुर रह गए।

कुमार हनुमान पिता की इच्छानुसार पालित-पोषित होकर समस्त कलाओं एवं विद्याओं के अधिकारी हो गए। शेषनाग की तरह दीर्घ बाहुयुक्त

शस्त्रों के परिज्ञाता और सूर्य के समान तेजस्वी हनुमान क्रमशः यौवन को प्राप्त हुए ।

उसी समय क्रोधितों में श्रेष्ठ पर्वत के समान रावण ने सन्धि में कुछ दोष निकालकर वरुण को पराजित करना चाहा। विद्याधर राजा आमंत्रित होकर वैताढ्य गिरि-सी सेना लेकर उसकी सहायताके लिए प्रस्तुत होने लगे । पवनंजय और प्रतिसूर्य भी वहाँ जाने के लिए तैयार होने लगे। तब पर्वत तुल्य स्वाभिमानी हनुमान उनके निकट जाकर बोला, 'हे पितृश्रेष्ठ, आपलोग यहीं रहें । मैं अकेला ही समस्त शत्रुओं को जीत लूँगा । तीक्ष्णास्त्र पास में रहते हुए कौन बाहुओं द्वारा युद्ध करता है ? बालक समझकर मेरे प्रति अनुकम्पा न दिखाएँ । कारण हमारे कुल में उत्पन्न मनुष्यों का जब शौर्य दिखाने का समय आता है तब उन्हें आयु प्रमाण से नहीं देखा जाता ।

इस भाँति बार-बार आग्रह करने पर उन्होंने हनुमान को युद्ध में जाने की अनुमति दे दी । हनुमान का मस्तक चूम कर उनलोगों ने उसके जाने के मांगलिक कार्यों को सम्पन्न किया । दुर्जय पराक्रमी हनुमान बड़े-बड़े सामन्त, सेनापति और सैनिक सहित रावण के स्कन्धावार में उपस्थित हुए। हनुमान का आना रावण को ऐसा लगा मानों साक्षात् विजय ही वहाँ आकर उपस्थित हो गयी है। हनुमान ने रावण को प्रणाम किया। उसने स्नेहवश हनुमान को अपनी गोद में बैठा लिया ।

रावण युद्ध के लिए वरुण की नगरी के बाहर उपस्थित हुआ । वरुण भी अपने सौ पुत्रों के साथ युद्ध करने के लिए नगर से बाहर आया ।

युद्ध प्रारम्भ हुआ । वरुण के पुत्र रावण से युद्ध करने लगे और वरुण सुग्रीव आदि वीरों के साथ युद्ध करने लगा। महापराक्रमी रक्त चक्षु वरुण के पुत्रों ने जातिवान श्वान जैसे सूअर को घेर लेते हैं उसी प्रकार रावण को घेर लिया ।

यह देखकर हस्तीयूथ के सम्मुख जिस प्रकार सिंह शावक उपस्थित होता है उसी भाँति क्रोध में दुर्द्धर हनुमान वरुण पुत्रों के सम्मुखीन हुए। हनुमान ने विद्या बल से उन्हें स्तब्ध कर पशुओं की तरह बाँध डाला। उन्हें बँधे हुए देखकर वायु जिस प्रकार पथ के वृक्षों को कम्पित कर देती है उसी प्रकार वरुण सुग्रीवादि योद्धाओं को कम्पित करता हुआ हनुमान की ओर दौड़ा। वरुण को हनुमान की ओर जाते देखकर रावण बाण वर्षा कर पर्वत जैसे नदी के वेग को रोक लेता है उसी प्रकार वरुण को बीच राह में ही रोक दिया ।

तब क्रोध से वरुण हस्ती के साथ हस्ती, वृष के साथ वृष जिस प्रकार युद्ध करते हैं उसी प्रकार रावण के साथ बहुत देर तक युद्ध किया अन्त में छल जानने वाले रावण ने अपनी छलना से वरुण को व्याकुल कर उकुल कर जैसे इन्द्र को पकड़ा था उसी प्रकार वरुण को पकड़ लिया। छलना भी बल की तरह ही बलवान होती है। तदुपरान्त जयनाद से आकाश को गुंजायमान करता विशाल-स्कन्ध रावण अपने स्कन्धावार को लौट गया। पुत्रों सहित वरुण ने रावण की अधीनता स्वीकार कर ली। तब रावण ने उसे मुक्त कर दिया। महान आत्माओं का क्रोध प्रणिपात तक ही रहता है।

अपने नेत्रों से जिसके पराक्रम को देखा था ऐसे जँवाई का मिलना दुस्कर समझकर वरुण ने अपनी कन्या सत्यवती का विवाह हनुमान के साथ कर दिया। रावण ने भी लंका लौटकर चन्द्रनखा (सूर्पणखा) की कन्या अनंग कुसुमा हनुमान को प्रदान की। सुग्रीव स्व-कन्या पद्मरागा को, नलने हरिमालिनी एवं इसी प्रकार सबों ने मिलकर एक हजार कन्याएँ हनुमान को दी। रावण ने हनुमान को अपने दृढ़ आलिंगन में लेकर उन्हें विदा दी। पराक्रमी हनुमान हनुपुर को लौट आए। अन्य विद्याधर गण व बानर पति सुग्रीवादि सानन्द अपने-अपने नगर को लौट गए।

तृतीय सर्ग समाप्त

चतुर्थ सर्ग

मिथिला नगरी में हरिवंशीय वासवकेतु नामक एक राजा थे। उनकी रानी का नाम विपुला था। उनके पूर्ण यशस्वी और प्रजा के लिए जनक तुल्य जनक नामक एक पुत्र था। अनुक्रम से वह राजा बना।

अयोध्या नगर में भगवान ऋषभ देव के पश्चात् इक्ष्वाकु वंश में सूर्य वंश के अनेक राजा हुए। उनमें कई मोक्ष गए, कइयों ने स्वर्ग प्राप्त किया। उसी वंश में जब बीसवें तीर्थंकर का तीर्थ प्रवर्तित हो रहा था उस समय विजय नामक एक राजा राज्य कर रहे थे। उनकी रानी का नाम था हिमचूला। उनके वज्रबाहु और पुरन्दर नामक दो पुत्र थे।

उस समय नागपुर में इभवाहन नामक एक राजा थे। उनकी रानी चूड़ामणि के गर्भ से मनोरमा नामक एक कन्या उत्पन्न हुयी। मनोरमा जब यौवन को प्राप्त हुयी तब चन्द्र जैसे रोहिणी का पाणि ग्रहण करता है उसी प्रकार वज्रबाहु ने मनोरमाका खूब धूमधाम के साथ पाणि ग्रहण किया। पाणिग्रहण के पश्चात् मनोरमा के साथ वह स्व-नगर की ओर रवाना हुआ।

उनकी पत्नी का भाई उदयसुन्दर भी स्नेह वश उनके साथ गया। जाते हुए राह में उन्होंने उदयाचल पर स्थित सूर्य से बसन्तगिरि के शिखर पर स्व-तपस्तेज से प्रकाशित गुण सागर नामक एक मुनि को देखा। वे ऊर्द्ध दिशा की ओर देख रहे थे मानो वे मोक्ष मार्ग का अवलोकन कर रहे हो। मेघ को देखकर मयूर जैसे प्रसन्न हो जाता है उसी प्रकार मुनि को देखकर प्रसन्न बने वज्रबाहु ने अपने यान को रोककर कहा, 'बड़े पुण्य से चिन्तामणि जैसे खूब समर्थ और वन्दना करने योग्य मुनि के मैं आज दर्शन कर सका।'

यह सुनकर उदयसुन्दर हँसते हुए बोला, 'कुमार, आप क्या दीक्षा लेना चाहते हैं?' बज्रबाहु ने कहा, 'हाँ मेरी ऐसी ही इच्छा है।' उदयसुन्दर उसी प्रकार हँसते हुए बोला, 'आपकी यदि ऐसी ही इच्छा है तो देर कैसी? मैं भी आपका अनुगामी बनूँगा।'

बज्रबाहु बोले, 'समुद्र जिस प्रकार अपनी मर्यादा को भंग नहीं करता उसी प्रकार तुम भी अपनी प्रतिज्ञा भंग मतकर देना।'

उदयसुन्दर बोला, 'निश्चय ही नहीं करूँगा।'

मोह से उतरने जैसे बज्रबाहु अपने वाहन से उतरे और उदयसुन्दर के साथ बसन्तगिरि के शिखर पर चढ़े। उनकी दीक्षा लेने की उत्कट अभिलाषा देखकर उदयसुन्दर बोला, 'कुमार, आप आज दीक्षा ग्रहण मत करिएगा। मैं जो तमाशा कर रहा था उसे धिक्कार है! मैंने तो दीक्षा की बात ऐसे ही हँसी-हँसी में कही थी। अतः हँसी-दिल्लगी में कही हुयी बात का उल्लंघन करने में कोई दोष नहीं होता। विवाहोत्सव के गीतों की तरह हँसी-दिल्लगी में कही हुई बात को सत्य नहीं समझना चाहिए। हमारे परिवार की यह आशा कि आप विपत्ति के समय हमारी पूरी मदद करेंगे दीक्षा ग्रहण कर आप तोड़ मत दीजिएगा। विवाह के निदर्शन रूप मांगलिक कंकण अभी भी आपके हाथ में बंधा है। अतः विवाह से प्राप्त हुए भोग का आप सहसा कैसे परित्याग कर सकेंगे? आपके दीक्षा लेने पर मेरी बहन मनोरमा तृण की भाँति आप द्वारा परित्यक्त हो जाएगी तब सांसारिक सुखों से वंचित होकर वह जीवित कैसे रहेगी?'

कुमार बोले, 'चारित्र मानव जन्म रूपी वृक्ष का सुन्दर फल है। स्वाति नक्षत्र का जल जिस प्रकार सीप में पड़कर मुक्ता हो जाता है उसी प्रकार तुम्हारी हँसी-दिल्लगी में कही बात मेरे लिए परमार्थ रूप हो गयी है। तुम्हारी बहन यदि कुलवती है तो वह भी मेरे साथ दीक्षा ग्रहण करेगी, नहीं

तो उसका सांसारिक जीवन कल्याणमय हो। मेरे लिए तो भोग सुख अब कोई अर्थ ही नहीं रखता। अतः तुम मुझे दीक्षा ग्रहण की आज्ञा दो। मेरे बाद तुम भी दीक्षा ग्रहण करना। क्योंकि अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना क्षत्रिय धर्म है।'

उदयसुन्दर को इस प्रकार प्रतिबोध देकर बज्रबाहु गुण रूपी रत्नों के सागर गुणसुन्दर मुनि के पास गए और तत्काल उनसे दीक्षा ग्रहण कर ली। उनके साथ मनोरमा, उदयसुन्दर एवं २५ अन्य राजकुमारों ने दीक्षा ग्रहण कर ली।

राजा विजय ने जब सुना कि बज्रबाहु ने दीक्षा ग्रहण कर ली है तब सोचने लगे—वह बालक भी मुझ से श्रेष्ठ है और मैं वृद्ध होने पर (भोग सुख-लिप्त) भी श्रेष्ठ नहीं हूँ। ऐसा सोचते हुए विरक्त बने राजा ने अपने कनिष्ठ पुत्र पुरन्दर को सिंहासन देकर निर्वाणमोह नामक मुनि से दीक्षा ग्रहण कर ली।

कालान्तर में पुरन्दर ने अपनी पृथ्वी नामक रानी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र कीर्तिधर को सिंहासन देकर क्षेमंकर नामक मुनि से दीक्षा ग्रहण कर ली।

कीर्तिधर राजा होकर इन्द्र जैसे पौलमी के साथ विषयसुख का भोग करते हैं उसी प्रकार अपनी रानी सहदेवी के साथ विषय सुख का भोग करने लगे। एक दिन उनके मन में भी दीक्षा लेने की बात आयी तब मन्त्रीगण उससे बोले, 'जब तक आपके पुत्र न हो आप दीक्षा न लें। यदि आप पुत्रहीन अवस्था में दीक्षा लेंगे तो पृथ्वी अनाथ हो जाएगी। हे राजन्, आप पुत्र जन्म होने तक प्रतीक्षा करें।'

मन्त्रियों द्वारा इस प्रकार रोके जाने पर कीर्तिधर दीक्षा न ले गृहस्थावास में ही रहने लगे। कुछ समय पश्चात् रानी सहदेवी ने सुकोशल नामक पुत्र को जन्म दिया। पुत्र जन्म का संवाद सुनते ही पति दीक्षा ग्रहण कर लेंगे इसलिए रानी ने बालक को छिपा लिया। बालक को छिपा लेने पर भी राजा को पुत्र जन्म ज्ञात हो गया। भला उदित सूर्य को कौन छिपा सकता है? तब स्व-कल्याण में कुशल कीर्तिधर ने अपने पुत्र सुकोशल को सिंहासन पर बैठाकर विजयसेन मुनि से दीक्षा लेली। तीव्र तपस्या और अनेक परिषहों को सहनकर राजर्षि गुरु आज्ञा प्राप्त कर एकाकी विचरण करने लगे।

एक बार कीर्तिधर मुनि मासक्षमण तप के पारने के लिए अयोध्या आए मध्याह्न के समय वे भिक्षा के लिए नगर में विचरण करने लगे। प्रासाद

शिखर से उन्हें देखकर रानी सहदेवी सोचने लगी—पहले जब इन्होंने दीक्षा ग्रहण की मैं पतिविहीना हो गयी। अब यदि उन्हें देखकर सुकोशल दीक्षा ले लेगा तो मैं पुत्रविहीन हो जाऊँगी और पृथ्वी स्वामी विहीना। अतः राज्य मंगल के लिए मेरे पति व्रतधारी और निरपराधी होने पर भी इन्हें नगर से बहिष्कृत कर देना उचित है। ऐसा सोचकर सहदेवी ने अन्य वेषधारियों के साथ उन्हें भी नगर से निकलवा दिया। जिसका हृदय लोभ के वशीभूत हो जाता है उसमें विवेक नहीं रहता।

सुकोशल की धाय माँ को जब पता चला कि सहदेवी ने व्रतधारी स्वामी को नगर से निकाल दिया है तो वह चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगी। सुकोशल ने उससे रोने का कारण पूछा। उसने वाष्परुद्ध कण्ठ से उत्तर दिया, 'हे वत्स, तुम जब छोटे थे तब तुम्हारे पिता ने तुम्हें सिंहासन पर बैठाकर दीक्षा ले ली थी। वे अभी भिक्षा के लिए इस नगर में आए थे। उन्हें देखकर शायद तुम भी दीक्षा ले बैठो इसी भय से तुम्हारी माँ ने उन्हें नगर से निकलवा दिया है। उसी दुःख में मैं रो रही हूं।'

धाय माँ की बात सुनकर सुकोशल संसार से विरक्त हो गया और उसी समय अपने पिता कीर्तिधर के निकट जाकर दीक्षा के लिए प्रार्थना की।

उसकी पत्नी चित्रमाला उस समय गर्भवती थी। वह बोली, 'हे स्वामी, इस राज्य का परित्याग कर पृथ्वी को अनाथ कर देना आपके लिए उचित नहीं है।'

सुकोशल बोले, 'तुम्हारे गर्भ में जो पुत्र है उसे मैं सिंहासन दे रहा हूँ। ऐसे उदाहरण अतीत में भी है।'

ऐसा कहकर सभी को सान्त्वना देकर सुकोशल ने पिता से दीक्षा ग्रहण कर ली और तपस्या में लीन हो गये। ममता एवं कषाय रहित पिता पुत्र दोनों महामुनि पृथ्वी को पवित्र करते हुए एक साथ विहार करने लगे।

पुत्र वियोग से कातर सहदेवी आर्तध्यान करती हुई मृत्यु को प्राप्त हुयी और गिरि कन्दरा में व्याघ्री रूप से जन्म ग्रहण किया।

मन को दमन करने वाले देह से भी निस्पृह और स्वध्याय ध्यान में तत्पर कीर्तिधर और सुकोशल मुनि चातुर्मास व्यतीत करने के लिए एक गिरि कन्दरा में जाकर प्रतिमा धारण कर अवस्थित हो गए। चातुर्मास शेष होने पर पारने के लिए जब वे गिरि कन्दरा से निकले तो पथ पर यमदूत-सी उसी

व्याघ्री को देखा। उन्हें देखते ही व्याघ्री मुँह फैलाकर उनकी ओर दौड़ी। दुहृद व सुहृद जनों का दूर से आना समान ही होता है।

व्याघ्री उनकी ओर आ रही है देखकर दोनों कायोत्सर्ग कर धर्म-ध्यान में लीन हो गये। वह व्याघ्री प्रथम तो विद्युत की भाँति सुकोशल मुनि पर गिरी। दूर से दौड़कर आक्रमण करने के कारण मुनि जमीन पर गिर गये। तब उसने नखरूपी अंकुश से सुकोशल की देह को चर्र से चीर दिया और मरूभूमि की पथिका जिस भाँति तृष्णार्त होकर पानी पीती है उसी प्रकार उनके रक्त को पिया। भिखारिन जैसे तरबूजे को नोच-नोच कर खाती है उसी प्रकार उसने उनका मांस नोच-नोच कर खाया। हस्तिनी जिस प्रकार गन्ने को पीलकर उसका रसपान करती है वैसे ही वह उनकी अस्थियों को दन्तरूपी यन्त्रों से पीलकर उसका रस पान करने लगी। मुनि के हृदय में इसके लिए लेशमात्र भी विकृति उत्पन्न नहीं हुई। बल्कि वे सोचने लगे इस व्याघ्री ने कर्मों के क्षय में उनकी सहायता कर सहायक ही हुई है। ऐसे विचार से उनका शरीर रोमांचित हो गया। मानो उन्होंने रोमांच का वर्म धारण किया है। इस भाँति व्याघ्री का खाद्य बनकर उन्हें उसी अवस्था में केवल ज्ञान प्राप्त हुआ और वे मोक्ष गये। उसी तरह कीर्तिधर मुनि को भी केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ और उन्होंने भी अद्वैत सुख के स्थान रूप मोक्ष को प्राप्त किया।

उधर सुकोशल राजा की पत्नी चित्रमाला ने एक कुलनन्दन पुत्र को जन्म दिया। वह तो जन्म से ही राजा था अतः उसका नाम रखा गया हिरण्यगर्भ। हिरण्यगर्भ जब युवावस्था को प्राप्त हुआ तब मृगावती नामक एक मृगाक्षी के साथ उसका विवाह कर दिया गया। हिरण्यगर्भ के मृगावती की कुक्षी से नहुष नामक पुत्र उत्पन्न हुआ मानो वह द्वितीय हिरण्यगर्भ ही था।

एक दिन हिरण्यगर्भ ने वृद्धावस्था का द्योतक सिर पर एक सफेद केश देखा। उसे देखते ही तत्काल उन्हें वैराग्य हो गया। अतः नहुष को सिंहासन पर बैठाकर विमल नामक मुनि से दीक्षा ग्रहण कर ली।

नरसिंह नहुष सिंधिका नामक अपनी पत्नी सहित क्रीड़ा करता हुआ अपने पैतृक राज्य का संचालन करने लगा। एक दिन वह उत्तरापथ के राजाओं को जय करने के लिए राज्य छोड़कर रवाना हुआ। नहुष राज्य में नहीं है यह जानकर दक्षिणापथ के राजाओं ने अयोध्या पर अधिकार करने के लिए नगर को घेर लिया। शत्रु तो छलनिष्ठ होते ही हैं। तब सिंहिका पुरुष

रूप धारण कर उनके सम्मुखीन हुयी और उन्हें पराजित कर विताड़ित कर दिया। सिंहनी क्या हाथियों की हत्या नहीं करती ?

उत्तरापथ के राजाओं को जीतकर नहुष अयोध्या लौट आया। वहाँ आकर सुना सिंहिका ने दक्षिणापथ के राजाओं को पराजित कर विताड़ित कर दिया है तो सोचने लगा मुझसे पराक्रमी के लिए भी जो कार्य दुष्कर था उसे सिंहिका ने किस प्रकार कर डाला ? इससे स्पष्टतः इसकी धृष्टता प्रकट होती है। उच्च कुलजात स्त्रियों के लिए ऐसा करना उचित नहीं है। इससे लगता है यह स्त्री सती नहीं है। सती स्त्रियों के लिए तो पति ही देवता होते हैं। इसलिए वह पति सेवा छोड़कर दूसरा काम नहीं करती। ऐसा साहसिक कार्य करना तो बहुत दूर की बात है। ऐसा विचार आने से अत्यंत प्रिय होते हुए भी खण्डित प्रतिमा की तरह उन्होंने उसका परित्याग कर दिया।

एक समय नहुष राजा को दाहज्वर हुआ। सौ-सौ उपचार करने पर भी वह दुष्टशत्रु की भाँति शान्त नहीं हुआ। उस समय सिंहिका स्व-सतीत्व प्रमाणित करने के लिए और पति की व्याधि दूर करने के लिए जल लेकर उसके पास आयी और बोली, 'हे नाथ, आपके अतिरिक्त यदि किसी पुरुष को नहीं चाहा है तो आपका ज्वर मेरे जल के छींटे से इसी क्षण शान्त हो जाए।' ऐसा कहकर उसने वह जल नहुष पर छिड़का। उस जल के छिड़कते ही मानों अमृत का स्पर्श हुआ हो इस प्रकार ज्वर शान्त हो गया। देवों ने सती पर पुष्प वर्षा की। राजा ने भी तब उसे ससम्मान ग्रहण कर पूर्व की तरह अपना लिया।

बहुत दिनों पश्चात राजा नहुष और सिंहिका के सोदास नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके बड़े होने पर उसे सिंहासन देकर नहुष ने मोक्ष प्राप्त करने के लिए उत्तम उपाय रूप दीक्षा ग्रहण कर ली।

अष्टाह्निका उत्सव का दिन आया। पूर्व की भाँति ही मन्त्रियों ने सोदास के राज्य में पशु हत्या निषिद्ध कर दी। वे सोदास से बोले, 'राजन् आपके पूर्व पुरुष अष्टाह्निका के समय मांस भोजन नहीं करते थे। अतः आप भी मांस न खायें।'

सोदास को मांस भोजन अत्यन्त प्रिय था। अतः उसने अपने रसोइए से कहा, 'छिपाकर मेरे लिए मांस ले आना, किन्तु राज्य में पशु हत्या निषिद्ध होने के कारण कहीं मांस प्राप्त नहीं हुआ। आकाश-कुसुम की प्राप्ति की तरह या असत् वस्तु के लाभ की इच्छा की तरह रसोइए का समस्त प्रयत्न व्यर्थ

हुआ। वह सोचने लगा मैंने सब जगह मांस की खोज की किन्तु कहीं मांस प्राप्त नहीं हुआ और राजा का आदेश है मांस लाने का। अब मैं क्या करूँ? उसी समय उसने एक मृत बालक को देखा। वह तत्क्षण उस बालक का मांस काटकर ले आया और मशाला आदि देकर अच्छी तरह पकाकर राजा को खाने के लिए दिया। वह मांस खाकर राजा बड़ा परितृप्त हुआ, और रसोइए से बोला, 'यह किसका मांस है?' रसोइए ने उत्तर दिया, 'नरमांस।' तब सोदास रसोइए से बोला, 'आज से तुम मुझे रोज नरमांस लाकर खिलाना। तब रसोइया नगर से रोज एक बालक चुराकर लाता और उसका मांस पकाकर राजा को खिलाता। अन्याय होने पर भी राजाज्ञा होने के कारण उसे कोई डर नहीं था। राजा ऐसा निष्ठुर कार्य करता है जानकर मन्त्रीगण घर के साँप को जैसे जंगल में छोड़ दिया जाता है उसी प्रकार सोदास को राज्यभ्रष्ट कर जंगल में छोड़ आए और उसके पुत्र सिंहरथ को सिंहासन पर बैठाया। सोदास बाधारहित होकर अब नरमांस खाता हुआ घूमने लगा।

एक बार घूमता हुआ सोदास दक्षिणापथ पर आया वहाँ उसने एक महर्षि को देखा। धर्म क्या है पूछने पर महर्षि ने उसे अर्हत धर्म का उपदेश दिया जिसमें की मद्य-मांस त्याग की मुख्यता है। धर्म सुनकर सोदास चकित हुआ और सदैव के लिए श्रावक व्रत ग्रहण कर लिया और मद्य-मांस त्यागकर शान्त स्वभावी हो गया।

उसी समय उस नगर का राजा बिना पुत्र के मारा गया। वहाँ के मन्त्री-मण्डल ने पाँच दिव्य प्रकट होने से सोदास को वहाँ का राजा बना दिया।

राजा ने स्वपुत्र सिंहरथ को दूत भेजकर अपनी अधीनता स्वीकार करने को कहा, किन्तु सिंहरथ ने दूत का तिरस्कार कर निकाल दिया।

सोदास सिंहरथ पर आक्रमण करने निकला। सिंहरथ भी उससे युद्ध करने निकला। पथ पर दोनों सेना के मिलते ही युद्ध आरम्भ हो गया। सिंहरथ के युद्ध में पराजित होने पर सोदास ने उसे बन्दी बना लिया। किन्तु तदुपरान्त उभय राज्य उसे देकर मुनिव्रत ग्रहण कर लिया।

सिंहरथ के ब्रह्मरथ नामक एक पुत्र हुआ। तदुपरान्त क्रमशः [illegible]ख, हेमरथ, शतरथ, उदयपृथु, वादिरथ, इन्दुरथ, आदित्यरथ, मान्धाता, वीरसेन, प्रतिमन्यु, पद्मबंधु, रविमन्यु, वसन्त तिलक, कुवेरदत्त, कुन्थु, शरभ, द्विरद, सिंहदशन, हिरण्यकशिपु, पुंजस्थल, काकुस्थल व रघु आदि राजा हुए।

उनमें कोई-कोई मोक्ष गया कोई-कोई स्वर्ग। तदुपरान्त अयोध्या में शरणार्थियों को शरण देनेवाला और बन्धुओं को अऋण करनेवाला अनरण्य नामक एक राजा हुए। उनकी रानी पृथ्वी के गर्भ से अनन्तरथ और दशरथ नामक दो पुत्र हुए।

अनरण्य के सहस्रकिरण नामक एक मित्र था। रावण के साथ युद्ध में पराजित होने पर उसे वैराग्य हो गया अतः उसने दीक्षा ले ली। मित्रता के कारण अनरण्य के मन में भी वैराग्य उत्पन्न हो गया अतः उसने भी स्वपुत्र दशरथ को राज्य देकर अपने ज्येष्ठ पुत्र सहित दीक्षा ग्रहण कर ली। उस समय दशरथ केवल एक महीना का था। काल प्राप्त होने पर अनरण्य मुनि मोक्ष गए और अनन्तरथ तीव्र तपस्या करते हुए पृथ्वी पर विचरण करने लगे।

राज्य करते-करते क्षीरकण्ठ दशरथ ने तरूणाई और पराक्रम एक साथ प्राप्त किया। इसलिए नक्षत्रों में जैसे चन्द्रमा, ग्रहों में सूर्य, पर्वतों में मेरु सुशोभित होता है उसी प्रकार वे भी राजाओं में सुशोभित होने लगे। दशरथ जब स्वयं राज्य का संचालन करने लगे तब परचक्र काल में लोगों पर जो उपद्रव होता था वह आकाश-कुसुम की भाँति दूर हो गया। वे याचकों को इच्छानुसार द्रव्य और अलंकारादि देते थे इसलिए वे मद्यम आदि दस प्रकार के कल्पवृक्षों के अनुक्रम में ग्यारहवें कल्पवृक्ष गिने जाते थे। वंश परम्परागत अपने साम्राज्य के अनुसार वे अर्हत धर्म का सर्वदा अप्रमत्त रूप में पालन करने लगे। युद्ध में जयश्री को वरण करने की भाँति उन्होंने दर्भस्थल (कुशस्थल) के राजा सुकोशल की पत्नी अमृतप्रभा के गर्भ से जात अपराजिता (कौशल्या) नामक रूपलावण्यवती और पवित्र कन्या से विवाह कर लिया। तदुपरान्त चन्द्र ने जैसे रोहिनी से विवाह किया उसी प्रकार कमलकुल नगर के राजा सुबन्धुतिलक की रानी मित्रा देवी के गर्भजात कैकेयी नामक कन्या का पाणिग्रहण किया। इसका द्वितीय नाम सुमित्रा था। कारण वह मित्रा की कन्या और स्वभाव से सुशीला थी। इसके बाद उन्होंने पुण्य, लावण्य और सौन्दर्य से जिसकी देह सुशोभित थी ऐसी सुप्रभा नामक अनिन्दित राजकन्या के साथ विवाह किया। विवेकियों में अग्रगण्य राजा दशरथ धर्म और अर्थ को क्षुण्ण किये बिना इन तीन राजकन्याओं के साथ सुख भोग करने लगे।

अर्द्ध भरत क्षेत्र के अधिकारी रावण ने एकबार एक नैमित्तिक से पूछा, 'अमर तो देवों को ही कहा जाता है। तब यह निश्चित है कि संसारी

प्राणियों की मृत्यु अवश्य होगी अतः मुझे बताएँ मेरी मृत्यु स्वाभाविक रूप में होगी या अन्य किसी के हाथों से। जो कुछ है स्पष्ट बताओ कारण आप्त पुरुष सदा स्पष्ट कथन ही करते हैं।' नैमित्तिक बोला—'जनक राजा की भावी कन्या के लिए दशरथ राजा के पुत्र के हाथों आप की मृत्यु होगी।'

नैमित्तिक की बात सुनकर विभीषण बोला, 'इस नैमित्तिक की बात सदैव सत्य ही होती है किन्तु इस बार मैं इसके कथन को असत्य प्रतिपादित कर दूँगा। क्योंकि मैं भावी कन्या और पुत्र के अपदार्थ पिता बीज रूप जनक और दशरथ जो कि इस अनर्थ के कारण होंगे हत्या कर दूँगा। उनको मार डालने के पश्चात जब कन्या और पुत्र होंगे ही नहीं तब नैमित्तिक का वचन झूठा हो जाएगा।'

रावण के सम्मत होने पर विभीषण उठा और अपने गृह गया। नारद जो कि उस सभा में उपस्थित थे। सब कुछ सुनकर दशरथ की राज सभा में गए। दूर से ही उन्हें आता देख दशरथ उठकर खड़े हो गए और उन्हें वन्दना कर गुरु की भाँति सम्मान देकर उच्चासन पर बैठाया। फिर उन्हें पूछा, 'आप अभी कहाँ से आ रहे हैं?'

नारद ने कहा, 'पूर्व विदेह की पुण्डरिकिनी नगरी में सुरासुर मिलकर श्री सीमंधर स्वामी का निष्क्रमणोत्सव कर रहे थे। वही देखने मैं वहाँ गया था। उस उत्सव को देखकर तीर्थनाथ की वन्दना के लिए मेरू पर्वत पर गया। वहाँ से लंका जाकर शान्ति गृहस्थ शान्तिनाथ को नमस्कार कर रावण की सभा में गया। वहाँ के एक नैमित्तिक को बोलते सुना कि जनक राजा की कन्या के लिए आपके पुत्र के हाथ से रावण की मृत्यु होगी। यह सुनकर आप दोनों को मारने के लिए विभीषण कृतसंकल्प हुआ है। वह शीघ्र ही यहाँ आएगा। स्वधर्मी होनेके कारण आपसे पर मेरा प्रेम है। इसीलिए शीघ्रातिशीघ्र यह सब बताने के लिए यहाँ चला आया।'

सब कुछ सुनकर दशरथ ने नारद की पूजा कर उन्हें विदा दी। नारद ने वहाँ से जनक राजा के यहाँ जाकर सारा वृतान्त कह सुनाया।

तब दशरथ ने अपने मंत्रियों को बुलाकर सारी वस्तुस्थिति उन्हें समझायी और उन्हीं पर राज्यभार सौंपकर स्वयं योगी का रूप धारण कर अरण्य की ओर चले गए।

शत्रु को छलने के लिए मन्त्रियों ने दशरथ की एक लेप्यमय मूर्ति बनवा-कर राजप्रासाद के एक अन्धकारमय स्थान में रख दी। [क्रमशः

क्षमापना पत्र या वैभव का दिखावा ?

श्रीमती गीता जैन

"मिच्छामि दुक्कडम्", या "क्षमापना" पत्रों की प्रथा किसने शुरू की होगी ? इसके प्रेरक कौन थे ? किस कारण, किस हेतु या प्रयोजन से या किस भावना से इस प्रथा की शुरुवात हुई होगी ? इस बारे में अनेक तरह के प्रश्न मन में सतत उठा करते हैं—परन्तु इसका कोई जवाब भी देना या नहीं, इसकी उलझन में बिना उलझे ही स्वयं अपने चिन्तन से उत्तर खोजने के प्रयास हेतु दिमाग पर जोर डालने का काम शुरू किया है—वर्षों पूर्व मनुष्यों की परिचित दुनिया काफी छोटी थी, आदमी जहाँ बसता था उसी के इर्द-गिर्द उसका परिचय, रिश्ता या सम्बन्ध हुआ करता था, दूसरे शब्दों में उसी परिधि में उसकी दुनिया हुआ करती थी, उसके बाहर जाने के लिए न तो साधन था और नहीं कोई प्रयास या आवश्यकता हुआ करती थी, उसका रोजिंदा काम उसी सीमित परिचय से चल जाया करता था।

"दो बर्तन टकराए" इस परम्परा से कहीं परस्पर कटुबर्त्ताव, बोलचाल, झगड़ा, अबोला जैसा हो जाया करता था। उससे सामाजिक सुसंगति में कहीं बाधा आती थी। जैसे कि दो भाइयों के बीच झगड़ा हो तो दूसरे सम्बन्धियों को भी मुश्किल या असुविधा का सामना करना पड़ता था। उनको मुश्किल यह होती है कि किसी एक भाई से बोलते तो दूसरा नाराज हो जाता, फलस्वरूप दो भाइयों के विवाद में दूसरे भी उलझ जाते और दो समूह बन जाते, छोटा गाँव छोटी बस्ती या छोटी दुनिया और उसमें दो ग्रुप इस तरह बन जाते जिससे कि एक दूसरे के यहाँ जाना-आना बन्द हो जाता, रिश्ते सम्बन्ध या आपसी व्यवहार पर भी असर होता। बात छोटी होते हुए भी उस इलाके के लिए बड़ी बन जाती थी।

इन्हीं कारणों व घटनाओं को लेकर धार्मिक पर्व के साथ "क्षमा" की बात जुड़ी होगी—धार्मिक पर्व के पावन दिन परस्पर क्षमा मांग कर नए सिरे से नए सम्बन्ध शुरू हो सकें—पुराने द्वेष झगड़े आदि भुला कर नए सिरे से सम्बन्ध स्थापित होने में सहायक बन सकें, इस तरह की क्षमाभावना को पर्व व धर्म से जोड़ने के कारण किसी भी प्रार्थी की क्षमा याचना करते हुए लघुता का अनुभव नहीं होता। व्यक्तिगत हारजीत का प्रश्न नहीं आता। इसी

उद्देश्य से धार्मिक पर्व के साथ क्षमायाचना का यह पर्व जोड़ दिया गया होगा। इस क्षमायाचना के कारण आपसी द्वेष को दूर करने में तथा मन निर्मल करने में बहुत ही सहायता मिलती है। वैसे भी द्वेष, क्रोध, घृणा आदि मन की क्षणिक स्थिति होती है, आदमी जैसे ही उससे मुक्त होता है, वह वापिस रिश्ता बनाने या सम्बन्ध सुधारने की कामना करने लगता है जिसमें क्षमापना का यह पर्व अत्याधिक सहायक होता है। दूसरी बात जिस किसी से कोई गलती हुई हो और उस गलती को लेकर जो नाराजी या द्वेष पनपा हो, उसे क्षमायाचना द्वारा पुनः शुद्ध किया जा सकता है, क्षमायाचना के साथ ही पुरानी बात आई-गई होने से मन निर्मल बन जाता है और उससे पुनः आंतरिक प्रगति शक्य बनती है। खासकर छोटे गाँवों में इस तरह की मनःशुद्धि से सारे गाँव का तनाव समाप्त हो वातावरण शुद्ध हो जाता है। समय जाते यांत्रिक युग और भौतिक आधुनिकता की दौड़ को लेकर संयुक्त परिवार विभक्त होते गए—घर से अलग होने वाला व्यक्ति अन्य किसी शहर या गाँव में रोजी-रोटी हेतु बस जाता है, तो वह भी अपने स्थान से पत्र द्वारा क्षमायाचना कर लिया करता है। परन्तु यह छोटा-सा नियम आवश्यकता की सीमा तोड़ कृत्रिम शिष्टाचार में शामिल हो गया है, आज तो बिना किसी क्षमायाचना की मूलभावना या विवेक को छोड़ ढेर सारे क्षमापत्र आते रहते हैं। कई बार तो उनके विविध हेतुओं आकार व छपाई आदि को देखकर लगता है कि ये पत्र क्षमापना हेतु हैं अथवा निज की प्रसिद्धि वैभव दिखावे की कामना लिये हुए हैं। क्षमायाचनाकी मूलभावना तो मनःशुद्धि के लिए है, परन्तु अब इन क्षमापना कार्डों को देखने से लगता है "साँप गुजर गया लकीरें रह गई—" परम्परा और अनुकरण की ये दिखावटी लकीरें प्रतिवर्ष नए-नए रूप और आकार के साथ तरह-तरह की कामनाओं के रंग लिए—छिछोरे स्वप्नों वाले ये क्षमापना पत्र—? इस बारे में कहीं चर्चा शुरू करती हूँ तो जो नए-नए विचित्र हेतु सुनने को मिलते हैं तब उस पर हँसें या रोएँ? कुछ समझ नहीं आता।

जैसे कि एक प्रतिष्ठित सम्पन्न महानुभाव क्षमापना के कार्ड के बहाने अपनी कम्पनियों की जाहिरात किया करते हैं, अपनी दर्जनों कम्पनियाँ जो कि इनकमटैक्स परपज से खड़ी की होती हैं, उन सबके नाम उक्त क्षमापना कार्ड के पीछे छापकर अपनी निजी सम्पन्नता की झांकी कराने उनके मतानुसार नम्र प्रयास मात्र होता है।

दूसरे एक भाई ने बताया कि पर्युषण में एकाध दो दिन की छुट्टी मिल जाती है तो खाली बैठे-बैठे ऐसे क्षमापना पत्रों पर पते कर लिया करते हैं, साल में एकाध बार सभी को याद कर लिया करता हूँ जिससे कि अपनी याद कायम रह सके। नहीं तो बिना कारण के वैसे पत्र लिखने की फुर्सत किसे होती है। ये क्षमापना कार्ड तो छपे हुए तैयार मिलते हैं उसमें कुछ भी स्नेहसिक्त शब्द लिखने की, निजी भावनाएँ अभिव्यक्त करने की कहाँ गुंजाइश होती है पत्र या मन में ? यह तो केवल रिवाजी दस्तूर है।

एक महानुभाव ने बहुत ही गर्व के साथ बताया कि इन पत्रों के द्वारा स्वजनों में ज्ञान प्रसार का अति उपयोगी कार्य कर लिया करता हूँ, कारण कि इन छपे हुए क्षमापना कार्डों पर भगवान के जीवन चरित्र के छपे हुए चित्र और उनके बारे की जानकारी छपी होती है, अब उन्हें क्या कहा जाए ? ज्ञान प्रसार की भावना है तो किताबें क्यों नहीं भेजते ? ऐसे पत्र अमूमन प्रत्येक परिवार में ५० से १०० तक या इससे भी अधिक मात्रा में आया करते हैं जिन्हें कौन ध्यान देकर पढ़ता है और उनसे प्रभावित होकर तत्सम्बन्धित पुस्तकें मंगाने का प्रयास करेगा ?

फिर इतने फोटो-चित्र वाले क्षमापना कार्डों का करना क्या ? न तो फेके जा सकते हैं न रद्दी में डाले जा सकते हैं, इस तरह कितनी सारी आशातना ? परन्तु इन सबका कोन विचार करता है, "सदियों से चली आती है" परम्परा को अनुकरण करना सहज है बजाय प्रतिकार के, चलती आई परम्परा का परोसा हुआ तैयार भोजन, जबकि, उसके प्रतिकार करने से अनेक तरह की विडम्बना, कारण सफाई आदि देनी होती है—उनकी जमी-जमाई दलील हजारों लोग झूठे या गलत और केवल तुम ही सच्चे ? इस तरह के वाक्बाणों को सुनना बरदाश्त करना पड़ता है, क्षमापना पत्र न लिख कर कंजूसी से पैसा बचाते हैं यह भी इंगित करने से लोग नहीं चूकते। फिर ऐसे पत्रों को धर्म के साथ जोड़ देने के कारण प्रतिकार करने वालों को नास्तिकता का फतवा और दे दिया जाता है, व्यवहार में ऐसों को बिल्कुल अज्ञानी के रूप में स्थापित किया जाता है, खुद के आलस्य को छुपाने के लिए सुन्दर शब्दों द्वारा बात का बतंगड़ करने का आक्षेप भी सुनना पड़ता है।

इस तरह परंपरा से थोड़ा हटने के प्रयास मात्र में जो भय शंकाएं आक्षेप आदि उत्पन्न होते हैं उन्हें सहन न कर पाने वाले लोग गलत जानते हुए, मुश्किल और कष्ट होते हुए भी परम्परा की लकीरें पीटते रहते हैं।

आशा है कि मुनि भगवंतजन इस बारे में योग्य मार्गदर्शन दें, वस्तुस्थिति पर प्रकाश डालते हुए आज के युवा वर्ग को उपयुक्त मार्ग बताएंगे।

गत वर्ष केवल १५ पैसे के पोस्टकार्ड पर मुरब्बी श्री चिमनलाल जे० शाह ने एक अमूल्य बात लिख दी—"जहां सतत जाग्रति है वहां क्षमायापना के कारण नहीं मिलते।" यह कितना सार्थक सत्य है।

वास्तव में जहां परस्पर बिना बातचीत के अबोला या वैर द्वेष है अथवा वर्ष दरम्यान वैमनस्य अधिक फैला हो वहीं क्षमायाचना करने की जरूरत है बजाय उसके हम अनावश्यक अपने स्नेही हितेच्छु परम मित्रों तथा व्यवसायिक सम्बंधों में ही क्षमापना के पत्र निरर्थक भेज कर समय और पैसा दोनों का दुर्व्यय किया करते हैं।

मानसिक तरंगों या वैचारिक आन्दोलन द्वारा भी हम अन्य व्यक्तियों के प्रति शुभ भावनाएं प्रेषित कर सकते हैं और वे शुभ भावनाएं व्यक्ति को सही अर्थ में शुभ साबित होती हैं, यह स्वयं सिद्ध हकीकत है।

तो फिर इस वर्ष भी क्षमापना पत्र या……?

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and
Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and
Nicco Batteries in Nagaland State.

GOLAGHAT ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : 3039, 3174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Factory and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phone : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :
4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 30-2071

Branch Office :
Peerkhanpur : Bhadhoi
Phone : 5378
5578,5778

WB/NC-330

Vol. XVI No. 4 **TITTHAYARA** **August 1992**

Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77